महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर गोपीनाथ कविराजजी
के
पुण्यजीवन का संक्षिप्त अनुध्यान

•

लेखक
श्री स्वामी नारायणानन्द तीर्थ

•

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज जन्म शताब्दी
समारोह समिति, वाराणसी

महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर गोपीनाथ कविराजजी

के

पुण्यजीवन का संक्षिप्त अनुध्यान

•

लेखक

श्री स्वामी नारायणानन्द तीर्थ

•

• अनुवादिका •

कुमारी गीता बैनर्जी, एम० ए०, पी० एच० डी०, आचार्य

•

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज जन्म शताब्दी
समारोह समिति, वाराणसी

प्रकाशक :
म० म० गोपीनाथ कविराज जन्म शताब्दी समारोह समिति
वाराणसी

प्रथम प्रकाश :
व्यास पूर्णिमा, जुलाई, १९८६

मूल्य : दो रुपये

प्राप्तिस्थान :
(१) श्री श्री माँ आनन्दमयी आश्रम
भदैनी, वाराणसी-१
(२) विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी-१

मुद्रक :
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी-१०



– श्री माँ आनन्दमयी आश्रम, वाराणसी, १९७४

निवेदन

"मेरी जीवन-कथा एक अचिन्त्य महाशक्ति की लीला है"—एक बार परम पूज्य श्री कविराज जी ने यह कहा था। ऐसी जीवन कथा का भाषा के द्वारा वर्णन असम्भव तो नहीं, परन्तु अवश्य ही कठिन है।

हमारा सौभाग्य है कि पूजनीय स्वामी नारायणानन्द तीर्थजी ने मूल वंगभाषा में संक्षिप्त रूप में इस पुनीत चरित को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया था। दीर्घ साठ वर्षों तक पूज्य कविराज जी के सान्निध्य में रहने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्हें अति निकट से देखने तथा गहराई से जानने का अवसर भी प्राप्त हुआ। अतः इस पुनीत जीवन चरित्र को सुचारु रूप से लिपिबद्ध करना स्वामी जी के जैसे पुण्यात्मा के द्वारा ही सम्भव है।

पूज्य कविराज जी के महाप्रयाण के पूर्व ही स्वामी जी इस लेख को समाप्त कर चुके थे। इस संक्षिप्त जीवनी से उनके दिव्य जीवन तथा साधना की एक झलक दृष्टिगत होती है।

अब पूज्य कविराज जी की जन्म शतवार्षिकी के अवसर पर इस संक्षिप्त जीवन-चरित्र का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है।

हिन्दी में इसका रूपान्तरण के लिये हम श्री श्री माँ आनन्दमयी कन्यापीठ की अध्यापिका कुमारी गीता बैनर्जी के निकट विशेष रूप से आभारी हैं।

—प्रकाशक

महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर गोपीनाथ कविराजजी

के

पुण्य जीवन का संक्षिप्त अनुध्यान

प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्या के पारंगत विद्वान् परम श्रद्धेय महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराजजी एम० ए० डी० लिट्०, पद्मविभूषण जैसे विश्वविख्यात महापण्डित, साधक, अनुभवसम्पन्न योगी के विषय में कुछ कहना मेरे जैसे साधारण मनुष्य के लिये वाचालता ही नहीं, किन्तु धृष्टता भी है। मध्याह्न के समय में तिमिरहरण जगद्-भास्वर भास्कर को दीप दिखाने का प्रयास जिस प्रकार हास्यप्रद होता है, उसी प्रकार ज्ञान भास्कर पूज्य कविराजजी का परिचय देने की चेष्टा करना मेरे जैसे क्षुद्र व्यक्ति के लिये उपहास जनक तथा दुःसाहसिक कार्य है। यह केवल दिखावा नहीं, अपितु सत्य है।

मेरी अक्षमता तथा अनिच्छा के रहने पर भी परमपूज्य कविराजजी के भक्तों के पुनः-पुनः आग्रह करने पर मुझे कविराजजी के श्रीमुख से समय-समय पर सुनी गई उनके पवित्र जीवन वृत्तान्त की कुछ घटनायें लिपिबद्ध करने की चेष्टा की गई है।

परम श्रद्धेय परम आदरणीय कविराजजी का जन्म ७ सितम्बर, सन् १८८७ को (२२ भाद्र, १२९४ बंगाब्द, भाद्र कृष्णा पञ्चमी में) ढाका जिले के धामराई ग्राम में उनके मामा के घर में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री वैकुण्ठनाथ कविराज तथा माता का नाम श्रीमती सुखदा सुन्दरी देवी था। सुखदा सुन्दरी के जन्म ग्रहण के कुछ ही दिन बाद उनकी माँ का परलोक वास हो गया था। प्रतिवेशिनी स्नेहशीला वृद्धा वामा सुन्दरी देवी ने ही इस बच्ची का लालन-पालन किया तथा कुछ बड़ी होने पर पाणिग्रहण संस्कार भी करा दिया। वामा सुन्दरी ने ही बालक गोपीनाथ का नाम 'निवारण' रखा था। उनकी कन्या स्वर्णमयी

इन्हें 'अक्षय' कहकर बुलाती थी। जन्म-कुण्डली बनाते समय ज्योतिषी ने इनका नाम 'अश्विनी कुमार' रखा था। बाद में जब माता सुखदा सुन्दरी बालक को लेकर काठालियाँ में मामाश्वसुर श्री कालाचाँद सान्याल के यहाँ आईं, तब श्री सान्याल महाशय ने गृह देवता गोपीनाथ का प्रसाद मानते हुये बालक का नाम 'गोपीनाथ' रखा। वह बालक गोपीनाथ ही आज जगद्वरेण्य पण्डितमूर्धन्य महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराजजी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

गोपीनाथजी के पिता श्री वैकुण्ठनाथ कविराजजी पुत्र जन्म के ५ महीने पूर्व कलकत्ते में ए० ए० पढ़ने गये थे। अल्पायु में ही उनका परलोकवास हो गया। वे अत्यन्त मेधावी . , परिश्रमी थे। वे १८८५ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० ए० में (संस्कृत में ऑनर्स सहित) प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण हुये थे। उनके सहपाठियों में सर्व श्री डा० सर ब्रजेन्द्रनाथ शील, श्री रामदयाल मजुमदार, श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय आदि विश्वविख्यात मनीषीगण के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

कविराजजी का पैतृक निवास स्थल मैमनसिंह जिले के टाँगाईल महकुमा के अन्तर्गत दाइन्या ग्राम था। वे शाण्डिल्य गोत्रीय वारेन्द्र श्रेणी के ब्राह्मण थे। उनकी उपाधि वाग्ची थी। इनके पूर्वज चिकित्सा व्यवसाय के कारण कविराज नाम से प्रसिद्ध हुये थे। तभी से इनके वंशज कविराज कहलाने लगे। दाइन्या ग्राम में कविराजों की प्रचुर भू-सम्पत्ति थी। परन्तु उत्तराधिकारियों के समुचित देखभाल न करने के कारण अधिकांश सम्पत्ति दूसरों के अधिकार में चली गई।

कविराजजी की बाल्यावस्था धामराई में ही व्यतीत हुई। उनके दादा (पिता के मामा) श्री कालाचाँद सान्याल ने अपने यहाँ पौत्र को लाकर ९ वर्ष की उम्र में उनका उपवीत संस्कार कराया।

उपवीत ग्रहण के अनन्तर कविराजजी नित्य संन्ध्या वन्दन तथा शालिग्राम की पूजा करने लगे। १३ वर्ष की आयु में अर्धकाली वंश की एक अति सुन्दरी कन्या श्रीमती कुसुमकामिनी के साथ उनका विवाह हो गया। इस बाल-विवाह के द्वारा उनकी पढ़ाई में कभो कोई बाधा नहीं पहुँची। बाल्यकाल से ही कविराजजी अत्यन्त संयमी पुरुष थे।

विवाह के कुछ ही दिन बाद एक बार युवक गोपीनाथ अपने ससुराल गये। युवावस्था में साधारणतः लोग ससुराल जाकर आमोद-प्रमोद, हास्य-परिहास में मस्त रहते हैं, किन्तु युवक गोपीनाथ को इन सब आमोद आह्लादों में किसी प्रकार की रुचि न थी; पुस्तकों के स्वाध्याय में ही उनकी अधिक अभिरुचि थी। एकदिन मध्याह्न में भोजन का समय हो गया था, परन्तु जामाता पूरे मकान में कहीं दिखाई नहीं दे रहे थे। ससुराल के सभी व्यक्ति चिन्तित हो उठे। अन्वेषण करते-करते एक ने जाकर देखा कि गोपानाथजी ग्रंथागार में बैठकर अति मनोयोग के साथ पुस्तकाध्ययन में रत हैं। पुस्तक मिलने पर वे स्नान भोजनादि तक भूल जाते थे। ऐसा हमने बाद में भी देखा। पुस्तक लेकर एक बार बैठने पर वे पाठ में ऐसा तन्मय हो जाते थे कि पुनः पुनः बुलाने पर भी उनको लोग भोजन के लिये उठा नहीं पाते थे। यह थी अध्ययन के प्रति उनकी तीव्र अभिरुचि।

कविराजजी १९०५ ई० में ढाका के जुबिली हाई स्कूल से एण्ट्रेन्स (हाईस्कूल) परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये। इस अल्पायु में ही महाभाष्य सहित पाणिनीय सिद्धान्त कौमुदी का उन्होंने पूर्णरूप से अध्ययन किया था। साथ ही अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कवि मिल्टन, शेक्सपीयर, वायरण, वार्डस्वार्थ, ब्राउनिंग, एमार्सन आदि बड़े-बड़े कवियों की पुस्तकों का वे अध्ययन कर चुके थे। संस्कृत तथा अंगेजी साहित्य में उनकी अधिक रुचि थी। एक एम० ए० कक्षा का छात्र पूर्णरूप से इन सब पुस्तकों को पढ़ने में असमर्थ होता है, किन्तु गोपीनाथजी ने एण्ट्रेन्स पढ़ते-पढ़ते ही इन सब पुस्तकों को पढ़ लिया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि वे बहुत ही मेधावी तथा परिश्रमी थे। उनकी असाधारण प्रतिभा को देखकर शिक्षक गण भी उनकी ओर विशेष ध्यान देने लगे थे। शिक्षकों में विशेषतः श्री मथुरामोहन चक्रवर्ती, श्री रजनीकान्त आमीन तथा श्री नवकुमार चट्टोपाध्याय से उन्हें अनेक प्रकार की सहायता तथा सदुपदेश प्राप्त होते थे। विद्यार्जन के साथ ही चरित्र गठन तथा आध्यात्मिक उन्नति की ओर भी उनका ध्यान कम नहीं था।

साधारणतः देखा जाता है कि बुद्धिमान या मेधावी छात्र कम परिश्रमी होते हैं, किन्तु कविराजजी मेधावी होने के साथ ही अत्यधिक परिश्रमी भी थे। यह तो मणिकांचन योग ही था। किन्तु स्वास्थ्य ठीक

न रहने के कारण बीच-बीच में अध्ययन में बाधा आ जाती थी। मलेरिया ज्वर से वे बहुत ही दुर्बल हो गये थे। अतः ढाका में एफ० ए० (इण्टर) पढ़ना असम्भव होने से वे पढ़ने के लिये कलकत्ता आ गये। वहाँ भी मलेरिया की आशंका से बालक गोपीनाथ जयपुर महाराजा के कालेज में पढ़ने के लिये जयपुर चले गये। वहाँ उनका कोई भी परिचित नहीं था, जिसके यहाँ रहकर वे अध्ययन में संलग्न हो पाते। साथ ही धनाभाव की समस्या भी थी। परन्तु उनके हृदय में अध्ययन की इतनी तीव्र वासना थी कि कोई भो असुविधा या बाधा उन्हें उद्योगहीन नहीं कर सकी।

इसी बीच गोपीनाथ के दादा (पिता के मामा) श्री कालाचाँद सान्याल का परलोकवास हो गया। एक परिचित व्यवसायी के पास उन्होंने कुछ रुपये जमा रखे थे। उसी में से व्याज के रूप में गोपीनाथजी को अध्ययन के लिये कुछ पैसे मिल जाते थे।

बंगला देश से प्रायः एक हजार मोल दूरी पर स्थित जयपुर आकर बालक गोपीनाथ ने पहले स्टेशन में अपना सामान रखा। उसके बाद वहाँ के गण्यमान्य तथा प्रभावशाली व्यक्ति मेघनाद बाबू, संसारबाबू, कान्तिबाबू, सञ्जीवनबाबू, अविनाशबाबू आदि से मिल कर उन्हें अपनी अध्ययन के प्रति तीव्र अभिलाषा ज्ञात करा कर उन्होंने भोजन तथा वासस्थान का प्रबन्ध कर लिया। वासस्थान तथा आहार की प्राप्ति के लिये उन्हें कई घरों में गृहशिक्षक का कार्य करना पड़ा। जयपुर कॉलेज में उन दिनों पढ़ने के लिये मासिक वेतन की आवश्यकता नहीं थी। श्री सञ्जीवन गाङ्गूली कॉलेज के प्रिन्सिपल थे। अल्पदिनों में ही गोपीनाथ जी अपने अध्ययन की गम्भीरता, विद्या के प्रति आग्रह एवम् उन्नत चरित्र के बल पर श्री सञ्जीवन गांगूली का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ हुये एवम् अनायास ही कॉलेज में भर्ती हो गये। उस समय बंगभंग के कारण सम्पूर्ण बंगाल में तथा बंगदेश से बाहर भी स्वदेशी आन्दोलन व्यापक रूप से चल रहा था। अतः किसी भी कॉलेज में युवकों की भर्ती बहुत कठिनाई से हो पाती थी। किन्तु गोपीनाथ जी को इस कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा शान्तभद्र व्यवहार के कारण अनायास ही गोपीनाथ जी का कॉलेज में प्रवेश हो गया। अब वे निश्चिन्त होकर अध्ययन में संलग्न हुये।

कॉलेज में उनके अंग्रेजी के अध्यापक थे श्री नवकृष्णराय। वे विश्व-विख्यात दर्शन शास्त्र के धुरन्धर पण्डित डॉ० सर व्रजेन्द्रनाथ शील के अतिप्रिय शिष्य थे। एक दिन अध्यापक श्री नवकृष्ण बाबू ने क्लास में छात्रों को एक अति प्रसिद्ध अंग्रेजी कविता की व्याख्या करने के लिये कहा। गोपीनाथ जी की कापी देख कर वे मुग्ध हो गये। गोपीनाथ जो ने कविता की व्याख्या एवम् कवि ब्राउनिंग की जीवनी तथा उनके द्वारा रचित कविता की भूयसी प्रशंसा करते हुये एक बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध लिखा था। उसे देख कर उनके अध्यापक नवकृष्ण बाबू ने आनन्दित होते हुये कहा था, "I could not have written better than this." उन्होंने कॉलेज के अध्यक्ष (प्रिन्सिपल) श्री सञ्जीवन गाङ्गूली से गोपी-नाथ जी की बड़ी प्रशंसा की। सभी अध्यापक तथा छात्रों के सामने उस प्रबन्ध को पढ़ा गया। एक इण्टर या बी० ए० कक्षा के छात्र का ऐसी अंग्रेजी भाषा में प्रबन्ध, वह भी ब्राउनिंग जैसे कवि के ऊपर, देख कर किसी को भी विश्वास नहीं हो रहा था। इसके बाद तो कॉलेज में उनकी प्रशंसा तथा अच्छे विद्यार्थी के रूप में ख्याति फैल गई। अध्यापक नवकृष्ण बाबू के कहने से कॉलेज के प्रिन्सिपल सञ्जीवन बाबू ने गोपीनाथ जी को मासिक १५) रुपये पुरस्कार के रूप में स्कालरशिप नियत कर दी। गोपी-नाथ जी अब और भी अधिक ध्यान देकर अध्ययन करने लगे। भगवान की कृपा से उनका आवास, भोजन तथा अर्थ का प्रबन्ध हो गया। छात्रों का अध्ययन ही तप है। उसी तपस्या में वे सर्वतोभावेन संलग्न हो गये। उनकी अध्ययन में ऐसी तन्मयता थी कि अन्य विषयों में उनका ध्यान जा ही नहीं पाता।

जयपुर में रहते हुये जब उन्होंने बी० ए० की परीक्षा दी, तब मौखिक परीक्षा लेने काशी क्वीन्स कॉलेज के अध्यक्ष डॉ० आर्थार वेनिस वहाँ गये थे। वे कविराज जी की परीक्षा लेते समय उनकी बहुमुखी प्रतिभा तथा पाण्डित्य को देखकर बहुत आनन्दित हुये, एवम् उन्होंने उनसे कहा, "तुम एम० ए० पढ़ने अवश्य काशी में मेरे कॉलेज में आना।"

१९१० ई० में बी० ए० पास करने के बाद गोपीनाथ जी एम० ए० पढ़ने काशी आये, तथा वे वेनिस साहब से मिले। उस समय भी गोपीनाथ जी अपने विद्याध्ययन के विस्तृत क्षेत्र का परिचय प्रदान कर वेनिस साहब को अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल हुये। वेनिस साहब जिन

विषयों को पढ़ाते थे उन्हीं विषयों को लेने के लिये उन्होंने गोपीनाथ जी से कहा, तथा अंग्रेजी व दर्शन लेने के लिये उन्हें मना कर दिया। इन दो विषयों में गोपीनाथ जी की अधिक रुचि देखते हुए भी वेनिस साहब ने उनसे कहा, "मैं भारतीय प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति, पुराकालीन लिपि विज्ञान, मुद्रा विज्ञान तथा पुरालेख शास्त्र पढ़ाता हूँ। इन सभी विषयों को तुम्हें द्वितीय वर्ष पढ़ना है। एम० ए० के प्रथम वर्ष में तो तुम्हें सभी साधारण विषयों को पढ़ना है। इसके अतिरिक्त प्राचीन पद्धति के अनुसार महामहोपाध्याय श्री कैलाशचन्द्र शिरोमणि महाशय के योग्य तथा प्रिय शिष्य महामहोपाध्याय श्री वामाचरण न्यायाचार्य के निकट तुम्हें न्याय-शास्त्र भी पढ़ना है, मैं उनसे कहूँगा। अध्यापक नर्मान साहब के पास पालि, प्राकृत, फ्रेन्च तथा जर्मन भाषा पढ़ना। इनके ज्ञान से भविष्य में तुम्हें शोधकार्य में सुविधा होगी।" इन सब पाठ्य विषयों के अतिरिक्त वेनिस साहब के निर्देशानुसार वे ब्राह्मी, कुषाण तथा गुप्तकालीन लिपि का क्रम-विकास का अध्ययन तथा इनके सम्बन्ध में वेनिस साहब के साथ चर्चा करने लगे।

गोपीनाथ जी की कुशाग्रबुद्धि, पढ़ने की शैली एवं रुचि को देख कर वेनिस साहब ने उनके आर्थिक अभाव को दूर करने के लिये उन्हें शेक्स-पियर तथा साधोलाल छात्रवृत्ति प्रदान किया। साधारणतया एक व्यक्ति को एक ही छात्रवृत्ति दी जाती है, किन्तु अध्यक्ष के विशेष रूप से कहने पर उन्हें दोनों छात्रवृत्तियाँ दी गईं। यह उनकी असाधारण योग्यता का ही परिचायक था।

बीच-बीच में अस्वस्थता के कारण उनके अध्ययन में बाधा आ जाती थी। हृद्रोग के कारण वे १९१२ ई० में एम० ए० फाइनल की परीक्षा दे नहीं पाये। तथापि वेनिस साहब उन्हें छात्रवृत्ति देते रहे। आचार्य नरेन्द्र देव कविराज जी से एक कक्षा नीचे पढ़ते थे। परन्तु इस अस्वस्थता के कारण अब कविराज जी नरेन्द्रदेव के सतीर्थ हो गये। दोनों एक ही कक्षा में पढ़ने लगे। आचार्य नरेन्द्र देव ने भी उत्तर काल में एक असाधारण पण्डित के रूप में ख्याति प्राप्त की थी, एवम् काशी विद्यापीठ के कुलपति के पद पर समासीन होकर देश के अनेक कल्याणप्रद कार्य किये हैं।

डॉ० वेनिस जब काशी राजकीय संस्कृत कॉलेज के अध्यक्ष थे, तब उन्हीं का एक विशिष्ट मित्र सर जान मार्शल भारत सरकार के पुरातत्त्व

विभाग के प्रधान परिचालक थे। उन्हें जब कभी शिलालेख प्राप्त होता था, वे मित्रवर वेनिस साहब को उसका प्रतिचित्र या फोटोग्राफ कराकर पाठोद्धार हेतु या विचार विमर्श करने के लिये अवश्य भेजते थे। वेनिस साहब भी अपने सुयोग्य तथा बुद्धिमान शिष्य गोपीनाथ के साथ इन सब विषयों में विचार विमर्श करने के उपरान्त ही अपना मत तथा विवरण बन्धुवर मार्शल साहब को भेजते थे। महापण्डित डॉ० वेनिस साहब का गोपीनाथ जी की विद्या तथा विचारबुद्धि के प्रति ऐसा ही विश्वास तथा निर्भरता देखी जाती थी। शिष्य के प्रति गुरु की ऐसी परिलक्षित उच्च धारणा शिष्य के लिए कम सौभाग्य का विषय नहीं है।

१९१३ ई० में एम० ए० परीक्षा देने वे इलाहाबाद गये। वहाँ मौखिक परीक्षा लेने विश्वविश्रुत पण्डित डॉ० भण्डारकर आये। वे संस्कृत के एक धुरन्धर विशेषज्ञ तथा महापण्डित थे। परीक्षा लेते समय उन्हें ज्ञात हुआ कि गोपीनाथ जी जर्मन, फ्रेन्च आदि भाषाओं में प्रकाशित पुरातत्त्व सम्बन्धी नूतन गवेषणाओं के जानकार हैं। उनके ज्ञान की व्यापक तथा सुविस्तृत परिधि का अवलोकन कर श्री भण्डारकर विशेष प्रभावित हुये। परीक्षा फल प्रकाशित होने पर देखा गया कि गोपीनाथ जी ने प्रथमश्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। ऐसा सुना गया है कि इससे पूर्व इलाहाबाद विश्वविद्यालय से और किसी को भी इतने अंक प्राप्त नहीं हुये।

× × ×

एम० ए० परीक्षाफल प्रकाशित होते ही लाहौर गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज एवं अजमेर मेओ कॉलेज के अध्यक्षों ने डॉ० वेनिस के निकट श्री गोपीनाथ कविराज जी को उनके कॉलेज के संस्कृत अध्यापक नियुक्त करते हुये तार किया। गोपीनाथ जी की प्रतिभा तथा पाण्डित्य से मुग्ध होकर विना आवेदनपत्र के ही विभिन्न स्थानों से नियुक्ति पत्र आने लगे। आश्चर्य का विषय है कि जीवन में उन्होंने कभी भी नौकरी के

लिये आवेदन पत्र नहीं लिखा। उपर्युक्त नियुक्तियों को अस्वीकार कर वे वेनिस साहब की आज्ञा से उन्हीं के निर्देशानुसार सरस्वती भवन में गवेषणाकार्य में संलग्न हुये।

इस पुस्तकालय में हस्तलिखित अनेक संस्कृत ग्रन्थ एवं अंग्रेजी, फ्रेन्च, जर्नन इत्यादि विभिन्न भाषाओं में मुद्रित विविध विषयों में अनेक तथ्यपूर्ण पुस्तकों के रहने से कविराजजी को विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञानार्जन के लिये सुविधा हुई।

प्रसङ्गवश कविराजजी के परवर्त्ती जीवन की दो घटनाओं को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—कविराजजी की सर्वतोमुखी प्रतिभा, अगाध पाण्डित्य तथा गवेषणा कार्य में दक्षता को देखकर कलकत्ता विश्व-विद्यालय के अध्यक्ष तथा कर्णधार सर्वजनमान्य विद्वद्वरेण्य गुणग्राही सर आशुतोष मुखोपाध्याय कविराजजी को कलकत्ता ले जाने के लिये काशी पधारे। परन्तु बार-बार प्रयत्न करने पर भी वे कविराजजी को काशी से हिला न सके। ठीक इसी प्रकार लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ० ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती भो कविराजजी को उच्चतम वेतन देकर भी काशी से लखनऊ नहीं ला सके। ऐसी ही थी आप को विद्या के प्रति निष्ठा। अध्ययन तथा अध्यापन के अनुकूल स्थान होने के कारण काशी संस्कृत कॉलेज तथा सरस्वती भवन के प्रति उनका प्रबल आकर्षण था। वे सदा अर्थ की अपेक्षा ज्ञानार्जन को अधिक महत्त्व देते और अपने जीवन में उसे उतार कर उन्होंने सबको दिखा भी दिया। आपके जगद्वन्द्य आदर्शभूत चरित्र का लोग हमेशा स्मरण करते रहेंगे। कार्यभार से अवकाश ग्रहण करने के बाद अक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से भारी रकम के वेतन सहित अध्यापन के लिये आप आमन्त्रित हुये, परन्तु उसे भी आपने अस्वीकार कर दिया। अर्थ तथा पद के प्रति उदासीनता अद्‌भुत थी।

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना के समय उत्तरप्रदेश की सरकार ने अति सम्मान के साथ प्रथम कुलपति के पद पर उनकी नियुक्ति का प्रस्ताव रखा। उस बहुजनवाञ्छित एवम् शिक्षाविभाग के सर्वोच्च पद को भी उन्होंने अस्वीकार कर दिया। साधना में विघ्न होने की आशंका से ही काशी के विद्वत्समाज के अनेक प्रार्थना करने पर भी उन्होंने उस पद को ग्रहण नहीं किया। ऐसी थी उनकी साधना के प्रति रुचि तथा निष्ठा।

कविराजजी के गम्भीर ज्ञान तथा गवेषणाकार्य की सफलता को देखते हुये उत्तरप्रदेश के शिक्षाविभाग ने उन्हें सरस्वती भवन ग्रन्थागार के अध्यक्ष पद पर ४ अप्रैल, १९१४ ई० को नियुक्त किया। इस सम्मानित पद पर इससे पूर्व महामहोपाध्याय पण्डित श्री विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी जी कार्य कर रहे थे। ग्रन्थागाराध्यक्ष के रूप में आपको अप्रकाशित ज्ञान का भंडार प्राप्त हुआ। भारतीय दर्शन की विभिन्न शाखाओं के साथ-साथ शैव धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, ईसाई व सूफी धर्म के विषय में भी कविराजजी ने अभूतपूर्व जानकारी प्राप्त की।

दीर्घ दश वर्ष तक इस महान कार्य में व्रती रहने के उपरान्त उनके अगाध पांडित्य तथा सभी विषयों में गवेषणा की दक्षता को देखकर १९२४ ई० में महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा के काशी राजकीय संस्कृत कालेज के प्रिन्सिपल के पद से अवकाश लेने पर सरकार ने उस सम्मानित पद पर कविराज जी को ही नियुक्त किया। अनेक विद्वान् इस पद के प्रत्याशी थे, किन्तु निर्वाचन समिति के सदस्यों ने कविराज जी के गम्भीर अध्ययन तथा योग्यता को देखते हुये इस सम्मानित पद पर उन्हीं को मनोनीत किया। इस पद को भी वे स्वीकार नहीं कर रहे थे, परन्तु सब के कहने पर वे मान गये। अध्यक्ष के दायित्वपूर्ण कार्य को सम्भालते हुये ज्ञानार्जन व साधना में बाधा होगी इसी आशंका से वे इस पद को ग्रहण नहीं कर रहे थे।

× × ×

१९१३ ई० में कविराजजी एम० ए० की परीक्षा में योग्यता सहित उत्तीर्ण होकर अपने पिता के मित्र एवं सहपाठी पण्डितप्रवर श्री रामदयाल मजुमदार से मिलने बंगला देश गये थे। वे मैमनसिंह के टांगाइल कॉलेज के अध्यक्ष व प्रिन्सिपल थे। पिता का परिचय देते हुये कविराजजी ने उन्हें प्रणाम किया। वे मित्र के पुत्र को देख कर बहुत प्रसन्न हुये। बातचीत के सिलसिले में उनसे कविराजजी ने एक प्रश्न किया, "आप लोग कहते हैं, हमारे शास्त्रों में भी अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है कि भगवान सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान तथा दयालु हैं। परन्तु ईश्वर में उपर्युक्त तीनों गुणों के विद्यमान होते हुये भी संसार में इतना दुःख क्यों है ?"

कविराजजी के प्रश्न को सुनकर श्री रामदयाल मजुमदार बोले, "तुम बुद्धिमान हो। तुम्हारा प्रश्न भी पण्डितों जैसा है, एवं तुमने अध्ययन भी अवश्य ही गम्भीरतापूर्वक किया है। अतः तुम अपने प्रश्न के उत्तर को स्वयं विचारपूर्वक प्रकट करो।" बाद में कविराजजी ने स्वयं ही विचारपूर्वक इस प्रश्न के यथार्थ उत्तर को प्रकट किया। उनमें विचार करने की असाधारण क्षमता थी एवं किसी भी समस्या का समाधान करने की अद्भुत योग्यता थी।

उनमें धैर्यशीलता भी असाधारण थो। उन्हें हमने कभी भी असन्तुष्ट या धैर्यच्युत होते नहीं देखा। कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार का प्रश्न जब कभी उनके सामने उपस्थित करता, तो वे अति सरल ढंग से उसे समझा देते। उनके उत्तर में किसी प्रकार की जटिलता या अस्पष्टता नहीं होती। प्रश्नकर्ता जब तक भलीभाँति समझ नहीं जाते, तब तक वे समझाते रहते, कभी असन्तुष्ट नहीं होते थे। आपाततः शास्त्रवाक्यों में कहीं-कहीं विरोध दृष्टिगोचर होता है, परन्तु कविराजजी इन विरुद्ध वाक्यों में एक ऐसा सुन्दर समन्वय की सृष्टि करते थे जिसकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते। उनका शास्त्रीय ज्ञान अगाध था। उनमें समन्वय करने की अपूर्व शैली, दूसरों को समझाने की असाधारण क्षमता तथा अपूर्वज्ञान, मननशोलता आदि विशेष गुण थे, जो बड़े-बड़े पण्डितों में भी दृष्टिगोचर नहीं होते हैं।

उनमें पाण्डित्य या उच्चपद का लेशमात्र अभिमान नहीं था। एक दिन सायंकाल मैंने उनके आवास स्थल पर जाकर देखा कि वे अपने आश्रित श्री सीतारामजी की पुत्री कुमारी शिवरानी को (बेबी को) हल् एण्ड स्टिवेन्स की ज्यामिति की पञ्चम थियोरेम समझा रहे हैं। एक सप्तम श्रेणी के स्कूल के छात्रा को शिक्षक जैसे पढ़ाते हैं, उसी प्रकार वे बेबी को बार-बार समझा रहे थे। और एक दिन जाकर देखा कि वे कुछ वृद्ध सज्जनों को ब्रह्मसूत्र की व्याख्या सुना रहे हैं एवम् वाचस्पति की भामती टीका तथा महामहोपाध्याय पाण्डितप्रवर श्री पञ्चानन तर्करत्न के द्वारा ब्रह्मसूत्र पर लिखे गये शक्ति भाष्य को अनवरत बोलते जा रहे हैं। मानों ये दोनों कठिन पुस्तकें उन्हें पूर्णरूप से कण्ठस्थ हों, थोड़ा भी विचार करने या पुस्तक देखने की आवश्यकता नहीं हो रही है।

एक दिन की घटना से कविराजजी के अगाध पाण्डित्य का परिचय प्राप्त होता है। यद्यपि योग, तन्त्र, शैवागम तथा बौद्ध दर्शन—ये ही उनके

प्रिय विषय थे, तथापि वे सभी शास्त्रों का अनुशीलन करते थे। एक दिन ग्रीष्म ऋतु में सायंकाल का समय था। करीब ४ बजे उनके आवास स्थल सिगरा जाकर मैंने देखा कि उनके घर में महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर डॉ० प्रमथनाथ तर्कभूषण तथा पण्डित राजेन्द्र विद्याभूषण बैठे हुये हैं। तर्कभूषण महाशय उन दिनों काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ओरियेण्टाल कॉलेज के अध्यक्ष थे। पण्डित राजेन्द्र विद्याभूषण ने कविराजजी से कहा, "तर्कभूषण जी अपने कॉलेज के आचार्य के परीक्षार्थियों के लिये महर्षि कपिल के सांख्य दर्शन पर एक पुस्तक लिखना चाहते हैं। इस विषय में आप से विचार करना चाहते हैं।" यह सुन कर कविराजजी ने कहा, "तर्कभूषण जी सांख्यदर्शन में पुस्तक लिखना चाह रहे हैं यह तो अच्छी बात है। परन्तु आचार्य के परीक्षार्थियों के लिये सांख्य-दर्शन में एक नूतन पुस्तक लिखने की आवश्यकता तो प्रतीत नहीं होती है। मेरे ख्याल से तो सांख्यदर्शन की जितनी पुस्तकें हैं, वे ही आचार्य के परीक्षार्थियों के लिये पर्याप्त हैं।" यह कह कर उन्होंने ६।७ सांख्य दर्शन की पुस्तकों के नाम गिना दिये। तर्कभूषण जी ने यह सहज रूप में स्वीकार किया कि यद्यपि उन्होंने सांख्यदर्शन की अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं, तथापि इन पुस्तकों के नाम तक नहीं सुने हैं, पढ़ने की बात तो दूर रही। जाते समय विद्याभूषण जी कविराजजी से बोले, "तर्कभूषण जी में लिखने का जो थोड़ा बहुत उत्साह था, अब आपकी इस बात पर लगता है वे और लिखने के लिये उद्यत नहीं होंगे।"

और एक बार इसी सिगरा के मकान में ही मेरठ कॉलेज के एक संस्कृत अध्यापक ने महर्षि वात्स्यायन के कामशास्त्र पर एक बहुत बड़ी पुस्तक लिख कर कविराजजी को उपहृत किया। साथ ही इस पुस्तक के सम्बन्ध में कविराजजी की क्या राय है, इस विषय में उनसे पूछा। कविराजजी पुस्तक को हाथ में लेते हुये पहले के कुछ पृष्ठ, बीच में से कुछ पृष्ठ तथा अन्तिम के कुछ अंशों को देखकर बोले, "क्या ऋषि ने साधारण लोगों के भोग विलास के लिये ही इस शास्त्र का प्रणयन किया था? ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपने पुस्तक में कहीं भी साधना की चर्चा नहीं की है। इस पुस्तक के प्रकाशित होने पर जन साधारण के उपकार के बदले अपकार ही अधिक होगा।" अपनी पुस्तक के सम्बन्ध में कविराजजी के मन्तव्य को सुनकर अध्यापक ने स्वीकार किया कि इस

ओर उनका ध्यान ही नहीं गया है। अतः वे इस पुस्तक को प्रकाशित नहीं करेंगे। पुस्तक को छपाने में उनका जो कुछ धन व्यय हुआ था उसे उन्होंने अर्थदण्ड के रूप में स्वीकार कर लिया।

जाते समय लेखक ने कविराजजी से प्रश्न किया कि इतने अल्प समय के भीतर पुस्तक के आलोचित विषय को वे कैसे जान गये ? इसके उत्तर में कविराजजी ने कहा, "सम्पूर्ण पुस्तक को पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती। सभी शास्त्रीय ग्रन्थों में अनुबन्धचतुष्टय होते हैं। ग्रन्थ का अधिकारी कौन है ? अर्थात् किसके लिये ग्रन्थ लिखा गया है ? विषय क्या है ? ग्रन्थ के साथ प्रतिपाद्य विषय का क्या सम्बन्ध है ? प्रयोजन क्या है ? ये ही सब विषय पुस्तकों में वर्णित होते हैं। अतः पुस्तक के प्रथमांश, मध्य तथा शेष के कुछ पन्ने पढ़ने से ही पुस्तक के आलोचित विषयों का ज्ञान हो जाता है।" कविराजजी की ग्रन्थ समालोचना की शैली अद्भुत थी। उनकी जैसी कुशाग्रबुद्धि एवं सभी विषयों में असाधारण योग्यता अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होती।

× × ×

कविराज जी में बाल्यकाल से ही साधु, संन्यासी, भक्त, योगी तथा महापुरुषों के दर्शन की उत्कट अभिलाषा थी। उनमें सत्संग के शुभ संस्कार शैशव से ही देखे जाते थे। धार्मिक विश्वास उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। धामराई में रहते समय माधवबाड़ी में नित्य कीर्त्तन तथा श्रीमद्भागवत का पाठ होता था। वे अति मनोयोग के साथ कथा श्रवण करते थे। बाद में भी देखा गया है कि साधु-दर्शन तथा कीर्त्तन सुनने का अवसर प्राप्त होने से वे उसे कभी नहीं छोड़ते। श्री रामदयाल मजुमदार तथा श्री शशिभूषण सान्याल (श्री शिवरामकिङ्करयोगत्रयानन्द) की आध्यात्मिक विचारधारा से कविराजजी बहुत प्रभावित हुए थे। ऐसा सुना गया है कि शिवरामकिङ्करयोगत्रयानन्द महाराज ने साक्षात् महर्षि पतञ्जलि से पाणिनीयव्याकरण-महाभाष्य पढ़ा था। स्वयं विश्वनाथ अपने परिकरों द्वारा उनकी आर्थिक सहायता करते थे। इस प्रकार जीवन में उन्होंने

अनेक बार देवता तथा महापुरुषों से अलौकिक रूप से सहायता प्राप्त की थी। उनका पाण्डित्य, साधना, वैराग्य तथा निर्लिप्तता वास्तव में अनुकरणीय तथा प्रशंसनीय था। कविराजजी में भी इन सद्गुणों का समावेश देखा जाता है। इसका श्रेय योगत्रयानन्दमहाराज को ही है। कविराज जी ने नियमतः दीर्घकाल तक उनका संग किया एवम् उनसे कृपा प्राप्त की थी।

१९१८ ई० में प्रथम बार कविराजजो ने योगिराज स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस का दर्शन किया। "ज्ञान गञ्ज" तथा "सूर्य विज्ञान" के विषय में उन्होंने सर्वप्रथम स्वामीजी के श्री मुख से ही सुना। कविराजजी उनकी योगशक्ति से परिचित होकर उनके प्रति विशेष आकृष्ट हुए। स्वामीजी वर्ष में ५।६ महीने काशी में निवास करते थे, और शेष महीने पुरी, वर्धमान तथा कलकत्ते में रहते थे। जब वे काशी में रहते तब कविराजजी नित्य उनका दर्शन करने जाते एवम् योग के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की चर्चा करते थे।

परमहंसजी के सत्संग से कविराजजो इतने प्रभावित हुए कि २१ जनवरी, १९१८ ई० में उनके हनुमानघाट स्थित आश्रम में उनसे कविराजजी ने विधिपूर्वक दीक्षा या मन्त्र ग्रहण किया। कविराजजी के दीक्षागुरु हुए योगिराज परमहंस स्वामी विशुद्धानन्दजी एवं शिक्षागुरु थे योगिराज ब्रह्मनिष्ठ तत्त्ववेत्ता ऋषिकल्प श्री शिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्द महाराज तथा लौकिक विद्यागुरु हुए प्राचीन शिक्षापद्धति में निष्ठावान प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्या के धुरन्धर पण्डित डा० आर्थार वेनिस। कविराजजी के जीवन में इन तीनों महापुरुषों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। इसे गंगा-यमुना-सरस्वती का त्रिवेणी संगम भी कहा जा सकता है।

आश्चर्य की बात है कि योगत्रयानन्द जी के साथ सात वर्ष तक कविराजजी का घनिष्ट सम्बन्ध रहने पर भी इन्होंने उनसे दीक्षा नहीं ली। गुरु शिष्य का सम्बन्ध तो पूर्व से ही निर्धारित होता है।

१९२० ई० के शेष भाग में योगत्रयानन्दजी किसी विशेष कारणवश अपने प्रिय काशीधाम को छोड़कर सदा के लिये चले गये। योगत्रयानन्दजी श्री स्वामी शिवरामानन्दजी के शिष्य थे। अतः वे शिवरामकिंकर कहलाते थे। कर्मयोगी के रूप में वे जैसे प्रख्यात हुए, वैसे ही भक्तियोगी तथा ज्ञानयोगी के रूप में भी उनका नाम भारतीय अध्यात्म-क्षेत्र में

अग्रगण्य है। अतः वे "योगत्रयानन्द" कहलाने लगे। उत्तरपाड़ा में गंगा के तट पर १९२७ ई० में प्रायोपवेशन द्वारा उनका देहावसान हुआ।

१९१८ ई० में आर्थार वेनिस का परलोकवास हो गया था। डा० आर्थार वेनिस तथा योगत्रयानन्दजी के अभाव में कविराजजी और अधिक समय अध्यात्म-चिन्तन में व्यतीत करने लगे। कॉलेज के आवश्यकीय कार्यों से निबट कर अवशिष्ट समय वे आध्यात्मिक चिन्तन-मनन या गुरु के समीप रहकर सत्संग में संलग्न रहते थे। नित्य गुरुदेव के चरणतल में बैठकर उनसे अमृतमय उपदेश श्रवण करते। गुरु के संग को वे साधना का ही एक अंग मानते थे।

× × ×

१९२४ ई० से १९३७ ई० पर्यन्त कविराजजी काशी गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज के प्रधान अध्यक्ष के पद पर रहे। इस पद पर रहते हुये उन्होंने प्रचुर ख्याति अर्जित की थी। १३ मार्च, १९३७ ई० में अपने कर्मस्थल से उन्होंने अवकाश ग्रहण किया। वे और भी आठ वर्ष तक इस सम्मानित पद पर रह कर काम कर सकते थे। समय से पूर्व ही पद त्याग कर देने के कारण उनकी करीब सवा लाख रुपये की क्षति हुई, एवम् अवकाशवृत्ति या उत्तर वेतन भी उन्हें कम मिला। अर्थ से परमार्थ को सदा उन्होंने अधिक महत्त्व दिया है। तभी तो वे इतनी धनराशि के आकर्षण को अनायास की परित्याग कर गुरु के निर्देशानुसार आध्यात्मिक साधना तथा योगानुष्ठान में तत्पर रहने लगे। साधना में विघ्न की आशङ्का से ही इतने उच्च पद का उन्होंने परित्याग किया।

उनके पेन्शन लेने के कुछ वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश के लोकशिक्षाविभाग के प्रधान परिचालक मैकेञ्जि साहब कॉलेज परिदर्शन करने आये। वे सर्किट हाऊस में ठहरे थे। कविराजजी कॉलेज के सम्बन्ध में उनसे विचार विमर्श करने उनके यहाँ गये। काम समाप्त होते ही जैसे ही कविराजजी उठने लगे साहब ने उनसे कहा, "मैं शीघ्र ही ओसमानिया विश्वविद्यालय का कुलपति होकर हैदराबाद जा रहा हूँ। अतः मैं यहाँ

से जाते समय आपको क्या मदद कर सकता हूँ ?" शायद उन्होंने आशा की थी कि कविराजजी उनसे कुछ सम्मानित पद या उपाधि के लिये अनुरोध करेंगे। जो स्थूल, सूक्ष्म, कारण सब प्रकार की उपाधियों के परित्याग के लिये गुरु के आदेशानुसार योगानुष्ठान में तत्पर हैं, उनके सामने तुच्छ उपाधियों का क्या मूल्य हो सकता है ? कविराजजी ने मैकेञ्जि साहब से कहा, "आप यहाँ से जाने से पहले यदि मुझे नौकरी से अवकाश देकर जाँय तो मैं विशेष उपकृत होऊँगा। आप कृपया यह कार्य कर दें, इसके लिये मैं आपको पहले ही धन्यवाद दे रहा हूँ।" कविराजजी की यह बात सुन कर साहब आश्चर्य में पड़ गये। अध्यात्म मार्ग में कितना अग्रसर होने पर जीवन में ऐसा त्याग आता है।

साधुदर्शन तथा तत्त्वानुसन्धान—ये ही दो उनके जीवन के प्रधान अवलम्बन थे। उनका यह विराट व्यक्तित्व का संघटन साधु महात्माओं की कृपा से ही हुआ है इसमें लेशमात्र भी सन्देह का अवकाश नहीं है। काशी ही थी उनका विद्यापीठ, कर्मस्थल तथा साधना-क्षेत्र। अधिकांश, साधु महात्माओं का दर्शन उन्हें यहीं हुआ था। साधुदर्शन करते समय कभी उन्होंने उनकी जाति, धर्म, आचार, देश तथा आयुगत भेदों के प्रति दृष्टिपात नहीं किया, ऐसी ही थी उनकी साधुओं के प्रति उदारता। साधुदर्शन के लिये जाकर वे कभी विफल मनोरथ हुये नहीं लौटे। वे सबसे कुछ न कुछ तत्त्व या अध्यात्म-मार्ग का पाथेय तो संग्रह कर ही लेते थे।

अपनी पद-मर्यादा को ओर वे कभी ध्यान नहीं देते थे। इस विषय में वे अति विनम्र थे। किसी सभासमिति में उन्होंने कभी योगदान नहीं किया। सर्वसाधारण के समक्ष कभी भाषण नहीं दिया। एकबार देश-मान्य पण्डित मदन मोहन मालवीय जी ने दुःख प्रकट करते हुये कविराज जी से कहा था, "मैं आपको निमन्त्रण देता हूँ, किन्तु आप कभी मेरे विश्वविद्यालय में नहीं आये।" पाँच-पाँच विश्वविद्यालय से उन्हें डि० लिट्० उपाधि दी गई है, कितने सुवर्णपदक तथा पुरस्कार विभिन्न संस्थाओं से उन्हें प्राप्त हुये किन्तु वे कभी किसी समावर्तन-समारोह में नहीं गये। इस विषय में वे चिरकाल से ही अत्यन्त उदासीन थे।

वे प्रातः-सायं नियमित रूप से यथा समय साधना में बैठते, किन्तु महानिशा में दीर्घकाल तक योगसाधना ही थी उनके प्रति गुरु का विशेष

निर्देश। इस महानिशा की क्रिया या साधना स्वामी श्री विशुद्धानन्द जी सबको नहीं प्रदान करते थे। कविराज जी के प्रति उनकी असीम कृपा थी। गुरुकृपा से ही उनको सदा अन्तर्मुखी भावों में मग्न रहते सबने देखा है। अन्तिम दिनों में उनकी यह तन्मयता और अधिक गम्भीर हो उठी थी, यह सब ने लक्ष्य किया है। किसी विशेष कार्य के लिये उन्हें बार-बार बुलाने पर भी अनेक समय उनकी बाह्य-चेतना नहीं पाई जाती थी। ऐसे प्रगाढ़ चिन्तन में वे निमग्न रहते थे।

कविराज जी साधना में कहाँ तक अग्रसर हुये थे इसका विचार करने की क्षमता हम जैसे क्षुद्र जीव में नहीं है। उनकी बाह्य स्थिति को देखकर ऐसा लगता था कि वे जगत् के सुख-दुःखों से बहुत ऊपर उठ चुके थे। उनका एक मात्र पुत्र जितेन्द्रनाथ (माखन) की मृत्यु से हमने उन्हें एक क्षण के लिये भी विचलित होते नहीं देखा। नित्य की भाँति उस दिन भी मृत पुत्र को श्मशान ले जाने के बाद अन्त्येष्टि-क्रिया के उपरान्त वे तत्त्वा-लोचन में संलग्न रहे। क्या ऐसा आचरण महापुरुषों से भिन्न साधारण मनुष्यों के द्वारा सम्भव हो सकता है? इस दुर्घटना की खबर सुन कर जो उन्हें सान्त्वना देने या समवेदना प्रकट करने आये, वे उनका यह उदासीन या अनासक्त भाव देखकर स्तम्भित हो गये।

इसके दो महीने बाद उनकी विधवा पुत्रवधू ने भी एक पुत्र तथा एक कन्या को छोड़ कर मृत पति का अनुगमन किया। इस घटना से भी महापुरुष की समता में कोई अन्तर नहीं आया। इसी स्थिति को श्रीमद्भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञ कहा गया है—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

उपर्युक्त सभी गुण अक्षरशः हम कविराजजी के जीवन में प्रतिफलित पाते हैं। पुत्र वियोग, स्त्री का अभाव, कन्या के वैधव्य आदि शोकों में साधारण मानव मुह्यमान या विह्वल हो जाते हैं। कविराजजी के जीवन में ये तीनों शोक संघटित होने पर भी उन्हें कभी शोकसंविग्न मानस होते नहीं देखा। ऐसी ही उनकी उच्च स्थिति थी। वे शोकमोह के बन्धनों से मुक्त हो चुके थे। परमज्ञानी की अवस्था उन्हें प्राप्त थी।

जैसा निर्मल ज्ञान का आलोक उनके जीवन में उद्भासित हुआ था वैसा ही योगज शक्ति का प्रकाश भी युगपत उनके जीवन में दृष्टिगोचर

होता है। सिगरा के मकान में रहते समय जब वे शाम को कॉलेज से लौटते तो रोज घर में आकर अपना कोट उतार कर एक आराम कुर्सी में वे दोनों हाथों से अंजलिबद्ध हो शान्त मुद्रा में कुछ देर बैठ जाते थे। ठीक उसी समय प्रतिदिन उत्तर की खिड़की से एक गेरू वर्ण का कबूतर उनके दाये हाथ पर आकर बैठता था। उसी ओर कुछ देर तक निष्पलक दृष्टि से उनके ताकने पर कबूतर धीरे-धीरे खिड़की के आड़ में से उड़ जाता था। ऐसी बात नहीं थी कि वे कबूतर को उस समय कुछ खाने को देते जिसके लोभ से वह रोज आता हो।

महर्षि पातञ्जलि के योग दर्शन के साधनपाद में एक सूत्र में कहा गया है—"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।" जिस साधक या योगी की अहिंसावृत्ति प्रतिष्ठित हुई है, उनके सान्निध्य में सभी प्राणियों को हिंसा-वृत्ति दूरीभूत होती है, उनके सत्त्वगुण में प्रतिष्ठित होने से उनके सम्मुख रज तथा तमोगुण का कार्यभूत हिंसावृत्ति प्रशमित होती है।

जो ही कविराजजी के घनिष्ट सम्पर्क में आये हैं, उन्हें अवश्य यह अनुभव हुआ होगा कि उनके शरीर से एक तड़ित शक्ति की उत्पत्ति होती थी। एक ताँबे के पैसे को बिस्तरे पर रख कर वे अपने दक्षिण हस्त की तर्जनी को बिस्तरे पर थोड़ा सा घिस कर पैसे से तीन-चार इंच ऊपर अंगुली को रखते तभी तुरन्त पैसा कूद कर उनकी अंगुली से चिपक जाता था। चुम्बक जैसे लोहे को आकर्षण करता वैसा ही वे ताँबे को आकर्षण करते थे। उनके शरीर में तड़ित शक्ति इतने परिमाण में सदा वर्तमान रहती कि जिसके कारण ताम्रखण्ड उनकी अंगुली से चिपक जाता था। यह उनकी गुरुप्रदत्त योग-क्रिया का ही फल है।

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराजजी की असाधारण स्मरण शक्ति की चर्चा चलने पर कलकत्ता के सुप्रसिद्ध हृद्-यन्त्र के विशेषज्ञ डाक्टर रामचन्द्र अधिकारी ने एक घटना का वर्णन किया। वे कविराजजी से प्रत्यभिज्ञाहृदय (शैव दर्शन के ऊपर एक अतिप्रसिद्ध तथा कठिन ग्रन्थ) पढ़ते थे। एक दिन बात-बात पर उन्होंने कविराजजी से पूछा, "क्या न्यायदर्शन में कहीं ईश्वर स्वीकृत हुए हैं ?" प्रश्न के साथ-साथ ही कविराजजी बोले, "न्यायकुसुमाञ्जलि के १७२ पृष्ठ में देखियेगा, वहाँ ईश्वर का अस्तित्व या सत्ता स्वीकृत हुई है।" सम्भवतः ६०

वर्ष पूर्व महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर वामाचरण न्यायाचार्य से उन्होंने यह ग्रन्थ पढ़ा था। उनकी ऐसी प्रखर स्मृति-शक्ति थी कि किस ग्रंथ में कौन से पृष्ठ पर जिज्ञास्य विषय वर्णित है—यह उन्होंने प्रश्न के साथ ही तुरन्त बता दिया। आज ऐसी स्मृति-शक्ति कहीं दिखाई नहीं देती। इतने दिन बाद भी उन्हें पृष्ठ तक याद है। यह योगज शक्ति से ही सम्भव है, केवल मेधा से नहीं हो सकता।

मनीषी गोपीनाथ कविराजजी के अध्यात्म-जीवन की एक विशेष चिन्ता-धारा है, अखण्ड महायोग। इसका स्वरूप क्या है, एवम् यह किस साधना द्वारा प्राप्त हो सकता है? यह सब अतिगुह्य रहस्य है, एवम् सर्वसाधारण के समक्ष प्रकाश योग्य भी नहीं है। किन्तु यह योगसिद्ध होने पर इसका फल सबको प्राप्त होगा। अपनी 'अखण्ड महायोग' नामक पुस्तक में इस विषय का उन्होंने दिग्दर्शन मात्र कराया है। आंशिक रूप में किसी-किसी के द्वारा आलोचित होने पर भी विश्व के सिद्धमहापुरुषगण एवम् गुरुसम्प्रदायों ने अब तक इसे गुप्त ही रखा है। वर्तमान युग में भी श्री जगद्बन्धु, योगी श्री रामठाकुर, श्री अरविन्द, श्री मेहेरबाबा आदि विश्ववरेण्य मनीषीवृन्द किसी न किसी रूप में इसका उल्लेख कर गये हैं। योगीवर श्री अरविन्द के मतानुसार इसे अतिमानस अवतरण कहा गया है। यह भी उस महायोग का आंशिक विवरणमात्र ही है। इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के योग आते हैं। जैसे शिव के सहित शक्ति का योग, आत्मा के साथ परमात्मा का योग, महाशक्ति के साथ आत्मा का योग, लोक-लोकान्तरों में परस्पर का योग, लोक के साथ लोकातीत का योग आदि। यह अखण्ड महायोग जब पूर्णसत्ता के रूप में निष्पन्न होगा, तब जगत् में किसी चीज का भी अभाव नहीं होगा। इस महायोग के द्वारा सबका सब प्रकार के अभाव तथा दुःखों का चिरकाल के लिये विनाश हो जायेगा। पारसी धर्म के प्रवर्त्तक महामनीषी श्री जरथुस्त्र ने प्रायः दश हजार वर्ष पूर्व ही कहा था कि एक दिन ऐसा समय आयेगा, जब संसार में जरा, व्याधि, मृत्यु, अभाव तथा दुःख कुछ भी नहीं रहेगा।

पृथ्वी पर नित्य स्वर्ग राज्य प्रतिष्ठित होगा। उस शुभ दिन में अधिक देर नहीं है, यही श्री कविराजजी की धारणा है। इस अखण्ड-महायोग के लिये तात्त्विक दृष्टि से दो विषयों की पूर्णतम अपेक्षा है। एक है मानव की ओर से पूर्णतम प्रयत्न या पुरुषकार एवं दूसरा है भगवान् या पर-

मात्मा की ओर से उनकी पूर्ण महाकरुणा या अनुग्रह। इनमें से प्रथम है निम्नगति से ऊर्ध्वगति एवम् द्वितीय है ऊपर से नीचे की ओर अवतरण या अवरोहण। जिस मुहूर्त्त में पूर्णरूप से इन दोनों का मिलन होगा तभी इसका फल सबके सामने प्रत्यक्ष होगा। इसकी प्रस्तुति के लिये आवश्यक है मानव को सदा इस शुभक्षण के लिए उन्मुख रहना। जैसे चातक पक्षी स्वाती नक्षत्र की वर्षा के लिये उन्मुख रहता है वैसा ही उन्मुख रहना। श्री भगवान् तो सदा ही जीव को आनन्द में रखना चाहते हैं, किन्तु जीव विषयवासना रूप तुच्छ आनन्द को ही प्रिय मानकर श्रेय जो स्वरूपानन्द है, उसे दूरीभूत करते हैं।

प्रसङ्गतः उल्लेखनीय है कि महामनीषी के श्रीमुख से अखण्डमहायोग का जो मूल उद्देश्य प्रकाशित हुआ है, जिसके लिये सम्पूर्ण विश्व का योगी-समाज अबतक साधना करता आ रहा है, उसका सूक्ष्म रूप से अवतरण हो चुका है। उसके स्थूल रूप से प्रकाशित होने में कुछ अन्तराय या obstacles हैं, जिसके लिये इन सबका अनुभव नहीं हो रहा है। उन प्रतिबन्धों के अपसारित न होने पर उसका ऊर्ध्वलोक के नीचे अवतरण सम्भव नहीं है। उन सब बाधाओं को दूर करने के लिये योगीगण आज प्रयत्नशील हैं, जिस किसी क्षण में वह प्रकाश में आ सकता है। उसके लिये सदा उन्मुखता के सहित प्रतीक्षा तथा विश्वनियंत्री के निकट आकुल प्रार्थना की आवश्यकता है।

आपाततः शास्त्रवाक्यों में एक विरोधिता दृष्टिगोचर होती है, किन्तु कविराजजी ने इन अनैक्यों में एक ऐसा सुन्दर समन्वय किया है, जो अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता है। ऐसी ही थी उनकी उदार तथा अभ्रान्त ज्ञानदृष्टि। इस प्रकार की प्रशस्त दृष्टि के कारण ही उन्होंने सभी प्रकार के मतों को स्वीकार किया है। सभी मत अपने-अपने स्थान पर सत्य हैं। वर्त्तमान काल में इसी दृष्टि के अभाव से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संघर्ष तथा विरोध का स्फुरण होता है। जैसे ज्ञान के क्षेत्र में वैसे ही कर्म के क्षेत्र में भी सात्त्विक ज्ञानदृष्टि के न खुलने पर विरोध नहीं मिटता व समन्वय भी नहीं किया जा सकता।

× × ×

श्री श्री माँ आनन्दमयी के साथ श्री कविराजजी का प्रथम साक्षात्कार उनका साधनमय जीवन का एक विशेष दिन है। श्री श्री माँ भक्त परिकरों के साथ १९२८ ई० में वाराणसी पधारीं। श्री श्री माँ के आगमन का संवाद सुन कर शहर के नर नारी नित्य सायं-प्रातः माँ के दर्शन के लिये जाते थे।

उन्हीं दिनों गौहाटी के कटन कॉलेज के अवकाश प्राप्त प्रसिद्ध अध्यापक महामहोपाध्याय पण्डित प्रवर श्री पद्मनाथ विद्याविनोद प्रतिदिन कविराज जी के यहाँ पुस्तक लेने जाते थे। अंग्रेजी साहित्य के अध्यापक होते हुये भी वे प्राचीन भारतीय इतिहास के ऊपर गवेषणा कर रहे थे। प्राचीन शिलालेखादि में उनकी विशेष रुचि थी। वे प्राचीन आदर्श के उग्रपन्थी सनातनधर्मी शास्त्रज्ञ पण्डित थे। उनके समक्ष लोक चरित्र का मानदण्ड इतना ऊँचा था कि वे सहज में किसी की प्रशंसा नहीं करते थे। एक दिन वे कविराज जी के घर आकर उनसे बोले, "काशी में एक माताजी पधारीं हैं। वे रामापुरा में श्री कुञ्जमोहन मुखोपाध्याय के घर ठहरीं हैं। माताजी जी अधिकतर समाधिस्थ ही रहती हैं। उनकी खूब उच्चस्थिति है। आप अवश्य उनका दर्शन करें।" श्री विद्याविनोद के मुख से माँ की प्रशंसा सुनकर कविराज जी विशेष प्रभावित हुये, कारण जो कभी भी किसी की प्रशंसा नहीं करते, वे माताजी की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं, अवश्य ही उन्होंने माँ में कुछ ऐसी विलक्षणता देखी है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

श्री कविराज जी श्री श्री माँ का दर्शन करने गये। वहाँ जाकर उन्हें ज्ञात हुआ कि माँ समाधिस्थ हैं। कब उनकी समाधि-भङ्ग होगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। यह सुन कर माँ के दर्शन किये बिना ही वे वापस लौट आये। दूसरे दिन मातृ दर्शन की तीव्र आकांक्षा लिये वे पुनः कुञ्ज बाबू के यहाँ गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि श्री श्री माँ भारत धर्म-महामण्डल के स्वामी दयानन्द जी के साथ धार्मिक विषयों पर चर्चा कर रही हैं। स्वामी जी यह विश्वास करते कि स्वयं देवी भगवती ही जगत के कल्याण के लिये श्री श्री माँ आनन्दमयी के रूप में अवतीर्ण हुई हैं।

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने अपनी विचार बुद्धि के अनुसार माँ को विभिन्न रूपों में देखा है, किसी के मत में माँ साक्षात् श्री श्री काली हैं, किसी का कहना है कि दशमहाविद्या से माँ का सम्बन्ध है, कारण माँ के

शरीर में किसी-किसी ने दशमहाविद्या का दर्शन किया है। किसी के मतानुसार महामुनि शुकदेव ही स्वयं आनन्दमयी माँ के रूप में अवतीर्ण हुये हैं, क्योंकि त्याग, वैराग्य तथा ज्ञान का ऐसा सुन्दर समन्वय अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता है। पर कविराज जी श्री श्री माँ को साक्षात् जगदम्बा के रूप में देखते थे, एवम् माँ ने उनका जो कल्याण किया है, उसे वे मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते थे। माँ का उनके प्रति कितना स्नेह था यह वे भाषा में व्यक्त नहीं कर पाते थे। माँ के प्रति उनका शरणागति का भाव विशेष रूप से परिलक्षित होता था।

कविराज जी की विशेष चेष्टा से ही १९३५ ई० में दिसम्बर के महीने में स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस के मालदहिया के आश्रम में विशुद्ध कानन में श्री श्री माँ के सहित स्वामी जी का साक्षात्कार हुआ था। स्वामी जी ने अत्यन्त आदर के साथ माँ का यथोचित् सत्कार किया। माँ के साथ उनके पति श्री भोलानाथ जी (श्री रमणीमोहन चक्रवर्ती) एवम् भक्त सन्तान ज्योतिषचन्द्र राय (भाई जी) थे। माँ ने स्वामी जी से कहा, "पिताजी तुम्हारी छोटी बच्ची आ गई है।" स्वामी जी ने भी इसके उत्तर में कहा, "हाँ बेटी, घर के भीतर आकर बैठो।" माँ के लिये स्वामीजी के सामने आसन बिछा हुआ था। परन्तु माँ आसन पर न बैठ कर जमीन पर ही बैठ गईं। माँ ने भाईजी से कहा, "तुम्हें बाबा से सूर्य-विज्ञान के सम्बन्ध में जानने की खूब इच्छा थी न? अब तुम्हें जो इच्छा हो, बाबा से पूछो। जो देखने की इच्छा हो, बाबा से कहो, बाबा सब दिखायेंगे।"

स्वामीजी ने व्याख्या करते हुए कहा, "सूर्यविज्ञान योग की कोई विभूति नहीं है। जो लोग सूर्य विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते हैं, उन लोगों की यह धारणा है कि सूर्यविज्ञान भी एक योग विभूति है किन्तु वास्तविकता तो यह है कि सूर्यविज्ञान के साथ योग विभूति का कोई सम्बन्ध नहीं है। सूर्यविज्ञान द्वारा सब कुछ सृष्ट होता है अर्थात् बाह्य जगत् के सभी पदार्थ सूर्यविज्ञान या योगज शक्ति के द्वारा ही सृष्ट होते हैं। तथापि इन दोनों में पर्याप्त भेद है। सूर्यविज्ञान में सूर्यरश्मि का ज्ञान प्राप्त कर विभिन्न रश्मियों के सम्मिश्रण से सृष्टि करनी पड़ती है। सूर्य का एक नाम सविता अर्थात् जो प्रसव या निर्माण करे। इस विश्व का सर्जन या आविर्भाव सूर्य से ही हुआ है। सूर्य से ही जगत् की सृष्टि-

स्थिति-लय सब होता है। सूर्यविज्ञानविद् इस रहस्य को जान कर अनेक प्रकार की रश्मियों के मिश्रण से इच्छानुसार विविध वस्तुओं का सृजन करते हैं। इससे योगी की आत्मिक शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु यदि इच्छाशक्ति के द्वारा ष्टि करना हो तो सृष्टि के उपादान तत्त्व बाह्य नहीं होते, आत्मा से ही ग्राह्य होते हैं। सूर्यविज्ञान में सृष्टि के उपादान तत्त्व सूर्य-रश्मियों से ग्राह्य होते हैं। इसी प्रकार चन्द्रविज्ञान में चन्द्र से, वायुविज्ञान में वायु से, शब्दविज्ञान में शब्द से उपादान ग्रहणीय होते हैं। किन्तु इच्छाशक्ति के द्वारा जो सृष्टि होती है, उसमें उपादान तथा निमित्त दोनों कारण अपनी आत्मा ही होती है। अतः योग या इच्छाशक्ति के द्वारा सृष्टि का विशेष रूप से निषेध किया गया है, कारण उससे आत्मिक क्षति होती है। यद्यपि उस क्षति की पूर्त्ति हो सकती है, तथापि इससे योगी की इष्ट सिद्धि में बाधा उत्पन्न होती है। किन्तु सूर्यविज्ञान से किसी वस्तु के निर्माण में आत्मिक हानि की सम्भावना नहीं होती।"

यह सब कहने के उपरान्त स्वामीजी ने उनके "ज्ञानगञ्ज" से लाये गये लेन्स से सूर्यरश्मि निष्कासित कर उन रश्मियों के मिश्रण से पहले अनेक प्रकार की गन्धों को उत्पन्न कर सबको दिखाया। इसके बाद उन्होंने विभिन्न पुष्पों का निर्माण किया, एवम् कर्पूर, केसर आदि उत्पन्न कर सबको चमत्कृत किया। अन्त में उन्होंने एक पतबहार के पेड़ से कुछ पत्तों को तोड़ कर उसे पीस कर एक गोली बनाई। उसे वे एक स्थान में रख कर उस पर लेन्स द्वारा सूर्य की किरणों को छोड़ने लगे। कुछ ही क्षण बाद वह गोली एक शीशे की गोली में परिणत हो गई।

इन सब भौतिक रचनाओं को देख कर माँ ने कहा, "पिताजी, यह सब तो प्रकृति का खेल है। अतः यह भी एक प्रकार का माया का ही चमत्कार है।" यह सुन कर स्वामीजी ने कहा, "हाँ, यह तो माया ही है। समस्त विश्व-सृष्टि हो तो मायावी की माया है। इसमें सन्देह ही क्या है?" पुनः माँ बोलीं, "माया की एक क्रिया से ही सभी मोहित हैं। पुनः माया के ऊपर और एक माया क्यों दिखा रहे हो पिता जी? माया का अपसरण करो।" कविराजजी की ओर देखती हुई पुनः माँ बोलीं, "पिताजी से प्रार्थना करो। पिताजी के पास परमवस्तु है। ये आवरण के ऊपर आवरण दे कर सब कुछ आवृत्त किये हुये हैं। पिताजी और आवृत

न करो। आवरण को हटा लो। उस परमवस्तु को अनावृत्त कर सबको दान करो, कारण एकमात्र परमवस्तु ही ग्रहणीय है।" इसके उत्तर में स्वामीजी ने माँ से कहा, "बेटी, मैं तो देने के लिए ही आया हूँ। देने के लिये ही तो मैं हाथ पसारे खड़ा हूँ, परन्तु कोई लेना चाहे तब तो ?" यह कह कर स्वामीजी हँसने लगे। स्वामीजी ने अपने शिष्यों से कहा, "सब को जलपान कराओ।" पुनः उन्होंने माँ से कहा, "बेटी, पिता के घर आई हो, कुछ खाना पड़ेगा।" माँ ने स्वामीजी से कहा, "पिता जी, इस शरीर को (अपने को दिखा कर) खिला कर लाये हैं।" माँ के मुख से यह सुन कर स्वामी जी ने सोचा, शायद माँ को खाने की इच्छा नहीं है। अतः वे पुनः बोले, "बेटी, तुम कुछ खाओगी नहीं ?" माँ ने कहा, "क्यों नहीं खाऊँगी ? छोटे बच्चे तो बार-बार ही खाते हैं, किन्तु तुम्हारी इस बच्ची का एक अभ्यास है, यह अपने हाथ से नहीं खाती है, इसे खिलाना पड़ता है।" इसके बाद स्वामी जी एक छोटी सी तस्तरी में कुछ फल तथा मिठाई लेकर माँ के सामने खड़े हुये। साथ ही माँ भी उठ कर खड़ी हो गईं। स्वामी जी की माँ के मुख में मिठाई देने की इच्छा थी, किन्तु इससे पूर्व ही माँ ने मिठाई उठा कर स्वामी जी के मुख में दिया। स्वामी जी ने भी फल लेकर माँ के मुख में दिया। कौन आगे दिये और कौन पीछे यह कहना कठिन है। दोनों ने ही दोनों के मुख में एक साथ ही दिया। यह सब देख कर सब आनन्द से हँस पड़े। सबके खाने के बाद माँ ने कहा, "पिताजी, तुम्हारी यह छोटी बच्ची अब चल रही है।" साथ ही भाव विभोर हो स्वामी जी बोल उठे, "बेटी, जा रही हो, किन्तु इस वृद्ध पिता को भूलना नहीं।"

× × ×

१९६१ ई० में कविराज जी के दुरारोग्य कैन्सर रोग से पीड़ित होने पर श्री आनन्दमयी माँ ने उन्हें दिल्ली ला कर सुप्रसिद्ध सार्जन डा० सन्तोष सेन से उनकी जाँच कराई एवम् बम्बई ले जाकर वहाँ प्रसिद्ध कैन्सर विशेषज्ञ डा० बर्जिस द्वारा आपरेशन करा कर उन्हें स्वस्थ किया।

परम स्नेहमयी श्री श्री माँ का अगाध स्नेह तथा करुणा की अजस्र धारा कविराज जी के ऊपर प्रथम दर्शन से लेकर अन्त तक अविच्छिन्न रूप से निरन्तर वर्षित हुई है, इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं है।

अति दुरारोग्य व्याधि से स्वस्थ होने पर वे सर्वतोभावेन माँ के प्रति निर्भरशील हो गये। अपने गुरुदेव विशुद्धानन्द जी के ब्रह्मलीन होने के बाद कविराज जी एक शिशुसदृश सरल तथा निःसङ्कोच भाव से श्री श्री माँ के चरणों में पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर अपने को माँ के हाथ का क्रीड़नक मात्र मानने लगे।

माँ के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदन करते हुये कविराज जी ने १९६७ ई० में एक पत्र में लिखा था, "अनेक वर्षों में इस बार ही मैं माँ के निकट जा नहीं सका। मेरा कोटिशः प्रणाम निवेदन करते हुये माँ से कहियेगा, सदा मैं अपने पास माँ को देख सकूँ। मैं माँ के पास जा नहीं पाया। अतः माँ अपनी स्नेहदृष्टि से मुझे वञ्चित न करें। मैं सदा माँ के चरणों में ही समर्पित हूँ।"

और एक पत्र में कविराज जी ने लिखा है, "छोटा बच्चा माँ की गोद में रहते हुये भी रोता है, हीरें जवाहरातें देने पर भी नहीं भूलता, किन्तु माँ का प्रसन्न मुख देख कर ही शान्त होता है। किन्तु वह माँ का प्रसन्न मुख कब देख पायेगा ? यह क्या वह जान सकता है ?" इतने बड़े जगत प्रसिद्ध विद्वान् तथा साधक का ऐसा अहंकार शून्य होना तथा अपने को निराश्रय मानना कितना उच्च अवस्था का परिणाम है ? इसका तो साधारणजन कल्पना तक नहीं कर सकते।

१८ अप्रैल, १९६९ ई० में आपकी सहधर्मिणी परमसौभाग्यवती श्रीमती कुसुमकामिनी देवी का उनके पतिदेव के सामने ही स्वर्गवास हो गया। इस घटना के बाद कविराज जी की सेवा सम्यक रूप से हो इस विचार से २० दिसम्बर, १९६९ ई० में कविराज जी को सिगरा के मकान से श्री श्री माँ के गंगातट पर स्थित आश्रम में स्थायी रूप से लाया गया। माँ के आदेशानुसार उनकी एकमात्र विधवा कन्या श्रीमती सुधारानी देवी भी पिता की सेवा के लिये आश्रमवासिनी हो गई।

जीवन के अन्तिम दिनों में हमने कविराज जी को कभी कभी अति गम्भीर मुद्रा में चिन्तन करते देखा है। उनके अन्तर्मुखी मन की

गति को देख कर सबकी यही धारणा हुई है कि वे सदा इष्ट के साथ एकात्मता को प्राप्त कर अखण्ड महायोग में निमग्न रहते थे। साथ ही उनमें जगत कल्याण का भाव भी परमकारुणिक बुद्धदेव के समान क्रमशः सुस्पष्ट हो उठा था।

× × ×

१२ जून, १९७६ ई० के शनिवार का दिन जगत् के लिये विशेषतः भारतवासियों के लिये बड़ा ही दुर्भाग्य का दिन है। कारण उस दिन सूर्यास्त से पूर्व अपराह्न ५ बजकर २० मिनट के समय भारत गगन से प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्या का अत्युज्ज्वल ज्योतिष्क ज्ञान भास्कर परम श्रद्धेय पण्डिताग्रगण्य ब्रह्मर्षि कविराजजी ने अस्तमित होकर श्री बाबा विश्वनाथ के श्री चरणकमलों में लीन होकर चिरशान्ति तथा परमानन्द लाभ किया है।

× × ×

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसम्वित्सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परेब्रह्मणि यस्य चेतः॥

जिनका चित्त परब्रह्मस्वरूप असीम, अगाध ज्ञानानन्दरूप, महासमुद्र में लीन हुआ है, उनका वंश पवित्र होता है, जननी का जन्म देना सफल है एवं पृथिवी पुण्यवती होती है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र के परमभक्त गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ रामचरितमानस में श्री राघवेन्द्र का वनगमन के प्रसंग में लिखा है—

ते पितुमातु धन्यजिन्ह जाए। धन्य सो नगरु जहाँ ते आये।
धन्य सो देस सैल बन गाऊँ। जहँ जहँ जाहिं धन्य सो ठाऊँ॥

वे माता-पिता धन्य हैं, जिन्होंने ऐसे पुत्र को जन्म दिया है। वह नगर धन्य है, जिस स्थान से ये आये हैं। वह देश, पर्वत, वन, ग्राम तथा वे सभी जगह धन्य हैं जहाँ-जहाँ ये जाते हैं।

प्रातः स्मरणीय उदारयशस्वी श्री कविराजजी का जिस वंश में जन्म हुआ था, वह कुल पवित्र हुआ है, जिस माता ने उन्हें गर्भ में धारण किया था, वह ऐसे पुत्र को जन्म देकर कृतार्थ हुई हैं। उनके जैसे एक स्वनाम धन्य महापुरुष को अपनी कोख में धारण कर वसुन्धरा महापुण्यवती हो गई। वे सभी नगर धन्य हैं, जहाँ-जहाँ निवास करते हुये शिक्षा-जीवन, कर्म-जीवन तथा साधक-जीवन उन्होंने व्यतीत किया है, वे सभी जगह आज पुण्यक्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध हो गये हैं। अपने साधनोचित चिर-आनन्दमय धाम में जहाँ उन्होंने प्रस्थान किया है, उस स्थान को अपनी दिव्य उपस्थिति से अधिकतर उज्ज्वल तथा आनन्दप्रद किया है।

परम पूज्य पाद आचार्य श्री शंकर के अनन्तर इन १२०० वर्षों के भीतर ऐसे सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न निस्पृह किसी विद्वान् महापुरुष का आविर्भाव हुआ है या नहीं यह तो निःसन्देह कहना कठिन है। जो स्थान रिक्त हुआ है, उसका सुदूर भविष्य में भी कभी पूर्ण होगा इसकी आशा नहीं है। उनका अभाव आज सम्पूर्ण भरातवासी पूर्ण रूप से अनुभव कर रहा है।

गत ६० वर्षों से आचार्य देव के चरण तल में बैठ कर उनके मुखकमल से विभिन्न समयों में जो कुछ मैंने सुना था उसी को गङ्गा जल से गङ्गा पूजा के समान कुछ घटनायें जो मन में आ गई हैं, उसे ही लिख कर अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि को इस रूप में निवेदन करने का यह अकिञ्चित्-कर प्रयास है।



पण्डितप्रवर श्री कविराजजी की लोकोत्तर प्रतिभा, साधनपुष्ट पाण्डित्य एवं साहित्य सेवा की स्वीकृति स्वरूप भारत सरकार, विभिन्न विश्वविद्यालय, उत्तर-प्रदेश सरकार एवम् बहुगण्यमान्य साहित्य संस्थान भिन्न-भिन्न अवसर पर उन्हें जो सम्मानित पद, पुरस्कार तथा उपाधि प्रदान कर स्वयं गौरवान्वित हुये हैं, उसकी एक सूची नीचे दी गई है :—

१. महामहोपाध्याय—	भारत सरकार, १९३४
२. करोनेशन सुवर्णपदक—	भारत सरकार, १९३७
३. डि० लिट्—	इलाहाबाद विश्वविद्यालय, १९४७
४. डि० लिट्—	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९५६
५. सर्टिफिकेट ऑफ अनार—	राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, १९६०
६. फेलोशिप—	वर्धमान विश्वविद्यालय, १९६४
७. पद्मविभूषण—	भारत सरकार १९६४
८. फेलोशिप—	रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बङ्गाल, कलकत्ता, १९६४
९. साहित्यिक पुरस्कार—	साहित्य अकादमी, भारत सरकार, १९६५
१०. डि० लिट्०—	कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९६५
११. साहित्य वाचस्पति—	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १९६५
१२. अध्यक्ष—	गंगानाथ झा इन्स्टीट्यूट, प्रयाग, १९६५
१३. सर्वतन्त्र सार्वभौम—	राजकीय संस्कृत कॉलेज, कलकत्ता, १९६७
१४. जगत्तारिणी सुवर्ण पदक—	कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९६९
१५. फेलोशिप—	साहित्य अकादमी, १९७१
१६. डि० लिट्०—	दिल्ली विश्वविद्यालय, १९७३
१७. डि० लिट्०—	नालन्दा विश्वविद्यालय, १९७५
१८. राज्यसाहित्यिक पुरस्कार (दस हजार रुपये)	—उत्तर प्रदेश सरकार, १९७५
१९. विद्या वाचस्पति—	वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, १९७६
२०. महर्षि—	मदन मोहन मालवीय शिक्षा संस्था, उत्तर प्रदेश, १९७६
२१. देशिकोत्तम—	विश्वभारती।

■

पूज्य कविराज जी की कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

१.	भारतीय संस्कृति और साधना	हिन्दी
२.	तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि	हिन्दी
३.	तान्त्रिक साधना ओ सिद्धान्त	बंगला
४.	श्रीकृष्ण प्रसंग	बंगला व हिन्दी
५.	काशी की सारस्वत साधना	हिन्दी
६.	पत्रावली	बंगला
७.	स्व सम्वेदन	बंगला व हिन्दी
८.	अखण्ड महायोग	बंगला व हिन्दी
९.	श्री विशुद्धानन्द प्रसंग	बंगला
१०.	तान्त्रिक साहित्य	हिन्दी
११.	साधु दर्शन और सत्प्रसंग	बंगला व हिन्दी
१२.	विजिज्ञासा	बंगला व हिन्दी
१३.	भारतीय साधनार धारा	बंगला व हिन्दी
१४.	पूजा तत्त्व	हिन्दी
१५.	तन्त्र आर आगम शास्त्रेर दिग्दर्शन	बंगला व हिन्दी
१५.	श्री साधना	हिन्दी
१७.	साहित्य चिन्ता	बंगला
१८.	अमर वाणी	हिन्दी व बंगला
१९.	लुप्तागम संग्रह	संस्कृत
२०.	आस्पेक्ट्स् ऑफ इण्डियन थॉट	अंग्रेजी